विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P5 : मध्यकालीन काव्य-II (भक्ति कालीन काव्य)
इकाई सं. एवं शीर्षक	M17: सूरदास की कविता में लोक जीवन
इकाई टैग	HND_P5_M17
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र-संयोजक	प्रो. चौथीराम यादव
इकाई-लेखक	डॉ. प्रभाकर सिंह
इकाई-समीक्षक	प्रो. जवरीमल्ल पारख
भाषा-सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. सूर की कविता में लोक-जीवन : विविध आयाम
   3.1. लोक-पर्व और लोक-मान्यताएँ
   3.2. चारागाही और पशु-पालन संस्कृति
4. भाषा-शिल्प में लोक-जीवन का प्रभाव
   4.1. लोक-गीत और संगीत
   4.2. ब्रज भाषा की लोक-छवि
5. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप -

- सूर की कविता में लोक-जीवन के विविध आयाम जान सकेंगे।
- लोक-जीवन में विन्यस्त लोक-पर्व, लोक-मान्यताएँ एवं लोक-संस्कृति के सन्दर्भ में सूर-काव्य का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- सूर-काव्य में चारागाही और पशु-पालन संस्कृति के महत्त्व का उद्घाटन कर सकेंगे।
- सूर-काव्य में लोक-जीवन की विविध छवियों का विवेचन कर सकेंगे।
- सूर-काव्य में लोक-जीवन के महत्त्व और परवर्ती हिन्दी कविता पर उसके प्रभाव का उद्घाटन कर सकेंगे।

2. प्रस्तावना

सूर की कविता का सबल पक्ष लोक और उसकी विविध छवियाँ है। ब्रज के लोक-जीवन की मुक्त और विस्तृत भूमि पर कृष्ण के चरित्र द्वारा सूर-काव्य का वितान विकसित हुआ। सूर की कविता महज हरि-कीर्तन नहीं, उनमें भावनाओं का अपार सागर है। वह प्रेम में आकण्ठ डूबे जीवन जीने की कला है। सूरदास ने पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को समसामयिक अनुभव के साथ जोड़कर समाज को भाव के साथ जीवन जीने की कला सिखाई। सूर ने कृष्ण-काव्य की परम्परा को आत्मसात कर कृष्ण की लोक-छवि प्रस्तुत की। सहज मानवीय और सामाजिक भूमि पर सूर-काव्य में विकसित कृष्ण का चरित्र विशिष्ट है। ब्रज के लोक-पर्व, लोक-मान्यताएँ और लोक-संस्कार का सृजनात्मक चित्रण सूर-काव्य का वैशिष्ट्य है। ब्रज की चारागाही और पशुपालन की संस्कृति में छिपे लोक-जीवन के विविध पहलुओं को सूर ने अपनी सृजनात्मकता से समृद्ध किया है। लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के लिए सूर ने ब्रज-भाषा की लोक-छवियों का वर्णन किया है। मुहावरे, लोकोक्तियाँ और लोक-जीवन में प्रयुक्त शब्दावली का प्रयोग सूर-काव्य की उपलब्धि है।

3. सूर की कविता में लोक-जीवन : विविध आयाम

सूरदास पीढ़ियों से चले आ रहे लोक-संस्कारों में प्रकट होनेवाली लोक-संस्कृति के कवि हैं। लोक-जीवन को जानने के लिए लोक-प्रचलित आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, संस्कार, कला-कौशल को जानना आवश्यक है। सूरदास के यहाँ ब्रज-संस्कृति का अक्षय भण्डार दिखाई देता है। उन्होंने अपने नायक को हर दृष्टिकोण से लोक-जीवन के समीप लाने की कोशिश की है। हिन्दू संस्कृति और लोक-जीवन से जुड़े तमाम संस्कार उनके यहाँ दिखाई पड़ते हैं। सूर की कविता में ब्रज-संस्कृति और कृष्ण के बहाने इन पारम्परिक लोक-छवियों का चित्रण तो है ही इन सबसे अधिक लोक-जीवन की वे अभिव्यक्तियाँ हैं, जो सूर-काव्य को विशिष्ट बनाती हैं। ब्रज की चारागाही और पशु-पालन संस्कृति, मनुष्य, पशु, पक्षी और प्रकृति के साहचर्य से उपजी लोक-जीवन की अद्‌भुत झाँकी सूर-काव्य के वैभव का विस्तार करती हैं।

3.1. लोक-पर्व और लोक-मान्यताएँ

सूर ने कृष्ण के व्यक्तित्त्व का समाजीकरण करते हुए उनको ब्रज की सामन्ती संस्कृति से अलग लोक-संस्कृति का हिस्सा बनाया और किसी राजवंशी नायक की जगह पशुपालक नायक बनाया। मध्यकालीन नागर संस्कृति के

बरक्स सूरदास ने ग्राम्य संस्कृति को महत्त्व दिया है। जहाँ गाँव लोक के प्रतीक रूप में है। *सूरसागर* में कदम्ब और बाँसुरी जैसी चीजें भी ग्राम्य संस्कृति की प्रतीक हैं। जिसमें कदम्ब प्रेमी-प्रेमिका का मिलन केन्द्र है और बाँसुरी मिलन का संगीतमय आमन्त्रण। कृष्ण ब्रज के ग्वाल-बालों, गोपी-गोपिकाओं के साथ खेलते हैं, गायें चराते हैं और ब्रज की ग्राम्य संस्कृति में सहजता से सम्मिलित होते हैं। ब्रज का ग्राम्य समाज कृष्ण की बाल-लीलाओं में, उनके सौन्दर्य में गहरी रुचि रखता है। वे नन्द राजा के भवन के बाहर ब्रज की मुक्त भूमि में उनकी बाल-क्रीड़ाओं का विस्तार करते हैं। उनके व्यक्तित्त्व का समाजीकरण करते हुए वे कहते भी हैं -

सूरदास सब प्रेम मगन भए,
गनत न राजा राय
सोभा सिन्धु न अन्त रही री
नन्द भवन भरि पूरि उमंगि चलि
ब्रज की बीथिनी फिरती बही री।

सूरसागर में सूर पारम्परिक 'संस्कारों' का वर्णन करते हैं, जिसमें नन्द के साथ सारा ब्रज शामिल होता है। यह सामूहिक उत्सव है। कृष्ण के जन्म के समय स्त्रियाँ बधावा लेकर जाती हैं। सोने की थाल में दूध, दधि और रोचना सजा हुआ है। गोपियाँ मंगल गान करती हैं। गोकुल निवासियों का नन्द के घर आना, यशोदा-नन्द द्वारा सगुन की भेटों को स्वीकार करना और पुनः उन्हें उपहार देना, कृष्ण के जन्मोत्सव को लोक-सौन्दर्य से भर देता है। इसी तरह छठी व्यवहार, नामकरण, अन्नप्रासन, वर्षगाँठ, कर्ण-छेदन के व्यापार में गोप-गोपियाँ एकत्र हैं। इन संस्कारों में माँ यशोदा की मनोवृत्ति को सूर ने मार्मिकता से चित्रित किया है। कर्ण-छेदन के समय माँ यशोदा के हृदय में धुकधुकी हो रही है। माँ के हृदय की इस संवेदना को सूर ने कुछ यूँ चित्रित किया है -

कान्ह कुँवर को कन छेदनों है, हाथ सुहारी भेली गुर की।
बिधि बिहँसत, हरि हँसत हेरि-हेरि यशुमति के धुकधुकी उर की।।

सूर ने मांगलिक अवसरों पर लोक-विश्वासों को प्रश्रय दिया है। बन्दनवार, चौक पूरना एवं मांगलिक मुहूर्त के अन्य कार्य सभी जन मिलकर लोक-उत्सव की तरह करते हैं।

ब्रज में होने वाले उत्सव सामाजिक हैं, जनसामान्य से जुड़े हैं। ग्वाल-समाज में रहने वाले सभी ब्रज-वासियों का सुख दुःख एक है। फिर वे पर्व, त्योहार अलग होकर कैसे मनाएँ। चाहे वह फाग का दृश्य हो या सावन के झूलों का, सभी लोकरंग में रंगा हुआ है।

वृन्दावन खेलत हरि होरी।
बाजत ताल मृदंग झाँझ
डफ नन्दलला वृषभानु किशोरी।
हो अपने गृह तो निकसी सखि
सास की त्रास ननद की चोरी।

सूर-काव्य में फाग के दृश्यों का बहुआयामी और बहुरंगी चित्रण है। फागुन में सभी मिलकर कृष्ण के साथ होली खेलते हैं। यहाँ छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच का फर्क मिट जाता है। यहीं पर वे लोकगीतों की मधुरता का

प्रयोग करते हैं। इसमें गीत, संगीत, नृत्य, रंग, अबीर और गुलाल सब मिलकर लोक का सरस रंग उपस्थित कर देते हैं।

खेलत फागु कुँवर गिरिधारी
अग्रज, अनुज, सुबाहु, श्रीदामा, ग्वाल, बाल, सब सखाऽनुसारी।
इत नागरि निकसी घर-घर ते दै आगे वृषभानु दुलारी।
नव सत सजि ब्रजराज द्वार मिलि प्रफुलित वदन भीर भई भारी।

सूर अपने काव्य में ब्रज की कृषक और पशुपालन संस्कृति का पुनसृजन करते हैं। कृष्ण-कथा और ब्रज-संस्कृति में यह सृजन विरल है। ब्रज के सभी वासी पर्व और त्योहार में कैसे एक होकर समरस जीवन का उत्सव मनाते हैं। सामन्ती या अभिजात्य भूमि से अलग व्यापक जन-समाज, सखा-समाज का उत्सव है। सावन में कदम्ब की डाल पर झूले डालकर झूलना ब्रज की उत्सव-धर्मिता का सबसे सुन्दर चित्र है। यमुना के पुलिन पर स्याम के संग गोपी और गोपिकाएँ मीठे शब्दों में जब सावन गान करते हुए झूलते हैं, तो प्रकृति का सारा सौन्दर्य वहीं उतर आया दिखता है। सूर के चित्रण में यह और अधिक सरसता और मार्धुय से भर जाता है। लोक का यह उत्सव रास और रंग से भरा है।

3.2 चारागाही और पशुपालन संस्कृति

सूर-काव्य का सबसे सृजनात्मक पक्ष चारागाही और पशु-पालन संस्कृति के चित्रण में दिखाई देता है। सूर चारागाही संस्कृति के सबसे सशक्त कवि हैं। *सूरसागर* में उन्होंने चारागाही संस्कृति से जुड़े सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्र उकेरे हैं। गोचारण ब्रज की संस्कृति एवं लोक-जीवन से जुड़ा पहलू है। कृष्ण के लिए गोचारण विवशता नहीं है, लीला एवं मनबहलाव है। इसी गोचारण के मध्य कृष्ण कई अलौकिक एवं ईश्वरीय लीलाएँ करते हैं। सूरदास इस ईश्वरीय लीलाओं के दबाब में कहीं लोक-कर्म की उपेक्षा नहीं करते, बल्कि यह ईश्वरीय लीला भी कहीं न कहीं लोक-जीवन से ही जुड़ा है। इसी गोचारण के बीच कृष्ण का लोकनायकत्त्व उभरकर सामने आता है। फलतः गोकुल, गायें, यमुना, कदम्ब, बाँसुरी, ग्वाल-बाल, गो-दोहन और गो-चारण सब मिलकर 'गो-चारण और पशु-पालन' संस्कृति को मुकम्मल बनाते हैं। गो-चारण संस्कृति से जुड़े लोक-विश्वास और लोक-मान्यताओं का प्रामाणिक चित्रण सूर-काव्य में मौजूद है। कृष्ण थोड़ा बड़े होते हैं, साथियों को गाय चराते देखकर उनका मन भी मचलता है -

आजु मैं गाई चरावन जैहों
वृन्दावन के भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहों।

कृष्ण के मन में इस तरह की इच्छा का पैदा हो जाना कोई ईश्वरीय लीला नहीं है, ब्रज की उस संस्कृति का परिचायक है जो गोचारण से जुड़ा है। अपने आस-पास की ग्रामीण संस्कृति का उस बाल मन पर सहज प्रभाव है। जिसका वर्णन सूरदास करते हैं। चारागाह का रमणीक और प्रकृति सौन्दर्य से भरा यह वही क्षेत्र है जहाँ कृष्ण की बाल-लीलाएँ, क्रीड़ाएँ, प्रेम, संघर्ष, मान और मनुहार सभी के आकर्षण का केन्द्र है। गायें और गोप-गोपिकाओं के साथ कृष्ण की लीला की यही भूमि है। कृष्ण को इस भूमि से बेहद लगाव है। किस्म-किस्म की रंग-बिरंगी गायें और वृन्दावन की हरी-भूमि कृष्ण को खूब भाती है। गायों के रंग की तरह उनकी प्रवृत्तियाँ भी अलग-अलग हैं, उनके रंग और प्रवृत्ति के अनुकूल उनका नामकरण भी किया गया है -

धौरी, धामरि, राती, रौही, बोल बुलाई चिन्हौरी

पियरी, भौंरी, गोरी, गैनी, खैनी, कजरी जेती

दुलही फलही, भौंरी हाँ कि ठिकाई तेती।

गोचारण के छोट-छोटे प्रसंगो को सूर बड़ी तन्मयता और संवेदना से व्यक्त करते हैं। कृष्ण को यहाँ गाय चराते हुए सिर्फ सुख ही सुख नहीं मिलता, छोटा जानकर सभी ग्वाल-बाल उन्हीं से गाय अधिक हँकवाते और घिरवाते हैं। कृष्ण अपने इस बाल-शोषण को माँ से कुछ इस तरह कहते हैं -

मैया हौं न चरैहों गाई।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाइ पिराई।
जौं न पत्याहि पूछि बलदाऊहिं अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माई जसोदा ग्वालिनी गारी देति रिसाई।
मैं पठवती अपने लरिका कौ आवै मन बहराई।
सूर स्याम मेरौ अति बालक मारत ताहि रिंगाई।

यहाँ ग्वालों के द्वारा कृष्ण का बाल-शोषण, कृष्ण का माँ जसोदा को शिकायत करना एवं जसोदा द्वारा इस क्रिया का प्रतिकार करना बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। कृष्ण न सिर्फ शिकायत करते हैं, बल्कि सबूत भी पेश करते हैं। माँ से कहते हैं, मुझ पर विश्वास न हो तो बलदाऊ से पूछ लो। यह बाल-मन का सहज उद्गार है, जिसमें सूर सिद्धहस्त हैं।

गोचारण संस्कृति पशु-प्रेम की संस्कृति है। यहाँ गायें दूध देने के लिए ही मात्र उपयोगी नहीं हैं, वे उनके सुख-दुख का आधार हैं, जीवन के अनिवार्य हिस्से हैं, परिवार की सदस्य हैं। उनके प्रेम और पीर की भाषा वे समझते हैं। कृष्ण गायों का नाम लेकर पुकारते हैं और गायें वहाँ पहुँच जाती हैं, जहाँ से कृष्ण टेर लगाते हैं। कृष्ण और गायों के इस प्रेम को सूर ने बड़ी तन्मयता से चित्रित किया है -

कहि-कहि टेरत धौरी, कारी।
देखौ धन्य भाग गाइनि के प्रीति करत बनवारी

गोचारण और पशुपालन सामूहिक जीवन की संस्कृति का परिचायक है। गोचारण के बीच ही कृष्ण की लोक-छवि उभरती है। यहीं कृष्ण की लीला का रूपायन होता है। गोचारण संस्कृति, ग्राम्य संस्कृति से जुड़ा है। गोचारण द्वारा सूर मध्ययुगीन सामन्ती संस्कृति के समानान्तर सामाजिक और ग्रामीण संस्कृति को महत्त्व प्रदान करते हैं। सूर ने गोचारण और पशुपालन संस्कृति को कृषि-संस्कृति से अलग नहीं रखा है। इन सबको समवेत रूप में प्रस्तुत किया है। ब्रज के लोक-जीवन की यह छवि सूर-काव्य में चित्रित होकर और अधिक जीवन्त हो गई है। प्रेम, बन्धुत्त्व, पारिवारिकता और सामाजिकता को महत्त्व देने वाली यह संस्कृति ग्राम्य संस्कृति का मुख्य आधार है, जो नागर-संस्कृति की संकीर्णता का मुखर विरोध करती है।

सूर-काव्य में व्यक्त समाज पशुपालन और गोचारण संस्कृति किसानी जीवन से गहरे जुड़ा हुआ है। गोचारण संस्कृति से जुड़े उनके गीतों में किसानी जीवन के लोक-अनुभव और लोक-संवेदना व्यक्त हुई है। किसानी जीवन की गहरी समझ के साथ खेती से जुड़े व्यापारों का सूक्ष्म चित्रण उनके काव्य में व्यक्त हुआ है -

प्रभु जू यौं कीन्ही हम खेती।
बंजर भूमि गाउँहर जोते, अरु जेती की तेती।

काम, क्रोध, दोऊ बैल, बली मिलि, रज तामस सब किन्हौं।
अति कुबुद्धि मन हाँकन हारे, माया जूआ दीन्हौं।
इन्द्रिय मूल किसान, महातृन अग्रज बीज बई।
जन्म-जन्म को विषय-वासना उपजत लता नई।
कीजै कृपा-दृष्टि की बरसा, जन की जाति लुनाई।
सूरदास के प्रभु सौं करियै होई न कान कटाई।

किसानी जीवन की कठिनाइयाँ और किसानों के श्रम की संवेदना को यह पद समग्रता में व्यक्त करता है। सूर-काव्य में किसान जीवन के यथार्थ का प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों का चित्रण किया गया है। मैनेजर पाण्डेय ने *भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य* पुस्तक में सूर के काव्य में किसानी जीवन की इस संवेदना के बारे में सही लिखा है कि सूर के काव्य में किसान-जीवन दोनों रूपों में ही यहाँ किसान-जीवन के यथार्थ का जितना प्रत्यक्ष चित्रण है, उससे अधिक किसान-जीवन के अनुभवों की सांकेतिक व्यंजना है। विनय के पदों में किसान-जीवन के यथार्थ का प्रातिनिधिक चित्र अधिक है, जबकि *भ्रमरगीत* में मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियों और अलंकारों के माध्यम से उस जीवन के अनुभव सांकेतिक रूप से आए हैं।" सूर के पदों में खेती और किसानी जीवन से जुड़े छोटे प्रसंग और उनकी छवियों से वे अपने कहन को और अधिक सार्थकता प्रदान करते हैं। निराई, गुड़ाई से लेकर पौधों के विकास में कितने पानी की आवश्यकता है, इन सबके सन्दर्भ सूर-काव्य में कभी प्रत्यक्ष तो कभी सांकेतिक रूप में व्यक्त किए गए हैं। कुछ चित्र -

सूरदास तीनों नहि उपजत
धनिया, धान कुम्हाड़े

xx xx xx

सूखति सूर धान अंकुर-सी
बिनु बरसा ज्यों मुलतई

सूर-काव्य में किसानी और पशुपालन की संस्कृति का चित्र उस दौर के सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों से जुड़कर व्यक्त हुआ है। चारागाही और पशु-पालन संस्कृति का किसानी जीवन से गहरा सम्बन्ध है। सूर के समय भी किसानी जीवन का मुख्य आधार पशु-पालन रहा होगा, तभी वह पशु-पालन संस्कृति का इतना सूक्ष्म चित्रण कर पाए। गोचारण प्रसंग में पशुओं के रंग-रूप और हाव-भाव के बारे में वे जैसा वर्णन करते हैं, वे इस संस्कृति के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता के द्योतक हैं।

किसान-जीवन और पशु-पालन के चित्रण में उनके यहाँ सामाजिक सन्दर्भ का भी उद्घाटन होता हैं। उस युग की सामन्ती व्यवस्था में किसानी जीवन की समस्याओं, लगान और ऋण के बोझ से हो रहे उनके शोषण का मार्मिक चित्रण सूर ने किया है -

सबै क्रूर मोसों ऋण चाहत
कहो कहा तिन दीजै।
बिना दियै दुख देत दया निधि, कहौ
कौन निधि कीजै।। (सूरसागर)

4. भाषा-शिल्प में लोक-जीवन का प्रभाव

कवि की सृजनात्मकता का आधार भाषा और उसमें काव्य-रूप की विविध छवियाँ है। सूर-काव्य का सबसे सबल पक्ष वहाँ प्रयुक्त लोक-भाषा, लोक-गीत और लोक-साहित्य की सामूहिक चेतना है। विदित है कि लोक-साहित्य में अक्षय-जीवन की शक्ति होती है। भारतीय काव्य-परम्परा में भक्ति-काव्य के कवियों ने लोक-साहित्य से अपने काव्य को समृद्ध किया है। इनमें सबसे प्रखर स्वर सूर का है।

4.1. लोक-गीत और संगीत

लोक-गीत लोक-जीवन की सहज, स्वाभाविक एवं संगीतमयी अभिव्यक्ति है, जिसमें लोक-जीवन का सच्चा और सहज चित्र सुरक्षित रहता है। इसमें जीवन और प्रकृति के कोमल-कठोर संवेदनाओं की अभिव्यक्ति होती है। आभिजात्य, शास्त्रीय और सामन्ती संस्कृति से अलग इसमें लोक-संवेदना की सहज अभिव्यक्ति होती है। भक्त कवियों के काव्य की लोक-समृद्धि का यही आधार है। लोक-गीतों में सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। सूर का काव्य लोक-गीतों की विविध रंगों, छवियों की अभिव्यक्ति है। कृष्ण के जन्मोत्सव के समय स्त्रियों के बधाई गीत, मंगल गीत, संस्कार गीत, लोरी और जागरण-गीत इसके सुन्दर उदाहरण हैं। इसके साथ ही सूर-काव्य में कृष्ण के नामकरण, अन्नप्राशन, कर्ण छेदन, गोवर्धन पूजा और अन्य उत्सवों के गीत भी हैं।

आजु भोर तम चुर के रोल
गोकुल में आनन्द होत है, मंगल धुनि महराने टोल।
फूल फिरत नन्द अति सुख भयौ, हरीष मंगावत फूल तमोल।

'भ्रमरगीत' सूरसागर का प्रमुख काव्यांश है। *भ्रमरगीत* में सूर ने भारतीय विरह-काव्य परम्परा को आत्मसात कर लिया है और उसे लोक-छवि से जोड़कर विशिष्ट बना दिया। उद्धव-गोपी संवाद में उद्धव नागर-संस्कृति के द्योतक हैं, तो गोपियाँ 'ग्रामीण या लोक-संस्कृति' का प्रतिरूप। जीवन और प्रेम के अनुभव से गोपियाँ उद्धव के शास्त्र-ज्ञान को पराजित कर देती हैं। *भ्रमरगीत* प्रगीतात्मक काव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। *भ्रमरगीत* के सारे पद गेय हैं। *भ्रमरगीत* में सूर की निजी संवेदना गोपियों के विरह का गीत बनकर व्यक्त होती है। तीव्र भावुकता और वैयक्तिक अनुभूति संगीत-समृद्ध होकर गीतात्मकता का अनूठा संसार उपस्थित करती हैं। यूँ तो सम्पूर्ण *सूरसागर* संगीत और गीत का आगार है, लेकिन भ्रमर-गीत में यह अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में मौजूद है। भ्रमरगीत का हर गीत भावों के अनुकूल रागों के साथ लोकानुभूति का सुन्दर काव्य है। लोक-गीतों के तत्त्वों के समावेश से *भ्रमरगीत* की सृजनात्मकता और संगीतात्मकता बढ़ गई है। *भ्रमरगीत* में किसान-जीवन के सांकेतिक चिह्न हैं, जो प्रायः भाषा और शिल्प में विन्यस्त है। गोपी-उद्धव संवाद में व्यक्त गोपियों की सहृदयता, वचन-वक्रता, व्यंग्य और मुहावरों में किसानी जीवन के अनेक प्रसंग और संवेदना का समावेश किया गया है। निर्गुण की निस्सारता को धान की भूसी, मूली की पाती कहना; और कृष्ण को हारिल की लकड़ी कहना, उन्नत काव्य-शिल्प और गहरी सामाजिक संवेदनशीलता का परिचायक है। किसानी जीवन से जुड़े मुहावरे और लोकोक्तियों से भरा यह पद उल्लेखनीय है -

आए जोग सिखावन पाँडे।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँडे।।
हमरी गति पति कमल नयन की जोग सिखै ते राँड़े।

कहौ मधुप कैसे समाहेंगे, एक म्यान दो खाँड़े।।

कह षटपद कैसे खैयतु है हाथिनि के संग गाड़े।

काकि भूख गई बयारि भीख, बिना दूध, घृत माँड़े।।

काहे को झाला है मिलवत कौन चोर तुम डाँड़े।

सूरदास तीनो नहिं उपजत धनिया, धान, कुम्हाड़े।।

4.2. ब्रज-भाषा की लोक-छवि

सूर की काव्य-भाषा ब्रज-भाषा की लोक-छवियों से भरी है। सामाजिक जीवन और जीवन-व्यवहार से जुड़ी सूर की काव्य-भाषा ब्रज-भाषा की जातीय स्मृति और लोक-संस्कृति की पहचान है। उनकी काव्य भाषा में गोकुल के ग्रामीण जीवन में व्यवहार किए जाने वाले शब्दों का भण्डार है। लोक-मानस में बसी यह भाषा जनभाषा और साहित्यिक भाषा के सन्तुलन से सृजित है। पदो की गीतात्मकता और संगीतात्मकता के लिए वह नागर और लोक - दोनो से प्रेरणा ग्रहण करते हैं, लेकिन लोक में उनका मन अधिक रमता है।

काव्य-भाषा को लोक और ग्रामीण संस्कृति के आस-पास रखने के लिए वे लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करते हैं। भाषा की सृजनात्मकता का यह रंग *भ्रमरगीत* में सबसे अधिक है। उद्धव-गोपी संवाद में लोकोक्तियों और मुहावरों का यह रंग अधिक गाढ़ा हो जाता है -

वह मथुरा काजर की कोठरी जे आवे ते कारे

xx xx xx

उर में माखन चोर गड़े

अब कैसहूँ निकसत नाहीं, उद्धव तिरछे हैं जू अड़े।

xx xx xx

कहौ मधुप कैसे समाहेंगे एक म्यान दो खाँडे

लोक-संस्कृति के तत्त्वों के समायोजन से लोक-जीवन का सुखकारी क्षण भाषा में कैसे शक्ति बिखेर जाता है, यह सूर-काव्य में कई जगह दृष्टिगोचर है। इसी प्रकार जन-भाषा में आँचलिक संस्कार से युक्त शब्दों का प्रयोग काव्य-भाषा के सौन्दर्य को अधिक बढ़ाता है-

उड़त गुलाल लाल भए बादर

रंगि गये सिगरे अटा अटारी

दूध दोहनी लै री मैया

दाऊ टैरत सुनि मैं आऊँ तब लौ करि विधि धैया

तद्भव शब्द सूर-काव्य को गतिशीलता प्रदान करते हैं। घरेलू और ग्रामीण बोल-चाल की भाषा में भावों के अनुकूल शब्दों का प्रयोग मन को लोक की गन्ध से भर देता है -

आबहुँ कान्ह साँझ को बेरिया।

गाइनि माँझ भए हौ ठाढ़ै, कहति जननि यह बड़ी कुबेरिया।

लरिकाई कहुँ नैकु न छाड़त सोई रहौ सुथरी सेजरिया।

आए हरि यह बात सुनतही धाइ लए जसुमति महतरिया।

लै पौढ़ी आँगन ही सुत कों छिटकी रही आँछी उजियरिया।

सूर स्याम कछु कहत-कहत ही बस करि लीन्हें आई निन्दरिया।

इस पद में सूरदास ने तद्भव शब्दों का मुक्त-हस्त प्रयोग किया है। ग्रामीण बोल-चाल के शब्द, लोक को पूरी गहराई के साथ चित्रित करते हैं, जिसमे काव्यात्मक जटिलता नहीं, बल्कि भाषाई सरलता एवं सहजता दिखाई पड़ती है। भाषा के तमाम तत्वों का सन्निवेश उसी लोक-भाषा में किया है। तमाम राग-रागिनियों में बाँधें गए पद लालित्य, माधुर्य आदि गुणों से पूर्ण हैं। शास्त्रीयता एवं लोक-संगीत का अद्भुत संयोजन उनके पदों की विशेषता है। अतः सूर की काव्य-भाषा का स्रोत उस युग के सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करता है। सूर की भाषा जन-जीवन के व्यवहार की भाषा है।

5. निष्कर्ष

सूर-काव्य ब्रज की लोक-संस्कृति का महासागर है। कृष्ण के जन्मोत्सव से लेकर *भ्रमरगीतसार* तक सूर ने ब्रज के पर्व, त्योहार, लोक-संस्कार का सूक्ष्म चित्रण किया है। पशु-पालन और चारागाही-संस्कृति ब्रज के लोक-जीवन का आधार है। सूरदास ने *सूरसागर* में उस चारागाही-संस्कृति के विविध आयामों और कृष्ण-काव्य में उसके महत्त्व को उद्घाटित किया है। लोक-भाषा और लोक-गीत सूर-काव्य का मूल आधार है। लोक के मुहावरे और लोकोक्तियाँ, तद्भव शब्द सूर के काव्य-संसार को समृद्ध करते हैं। लोक-परम्पराओं और लोक-भाषा को साहित्यिक ब्रज-भाषा में विन्यस्त कर सूर ने ब्रज-भाषा की सृजनात्मकता को बढाया है।

A Gateway to All Post Graduate Courses